International Journal of Education and Science Research Review
E-ISSN 2348-6457
Volume-2, Issue-3 June- 2015
www.ijesrr.org Email- editor@ijesrr.org

आचार्य श्री रजनीश के अनुशासन सम्बन्धी विचारों का अध्ययन

Ashwani Kumar Yadav
Research Scholar
Sunrise University Alwar Rajasthan

Dr.Ritu Bhardwaj
Supervisor
Sunrise University Alwar Rajasthan

सार–
आचार्य श्री रजनीश की अनुशासन सम्बन्धी अवधारणा भी परम्पराओं से कुछ हट कर है। उनका विचार है कि आज्ञा पालन वहीं तक होना चाहिये जहां तक स्वयं को उचित लगे। अनुशासन को वे बहुत गहरे अर्थ में लेते हैं। उनका विचार है कि अनुशासन का अर्थ है व्यक्ति में एक व्यवस्था का निर्मित होना। और यह व्यवस्था सम्यक चिन्तन पर आधारित होनी चाहिये।

प्रस्तावना–
आचार्य श्री रजनीश के शिक्षा, महिला शिक्षा व श्शिक्षक सम्बन्धित विचारों का अध्ययन किया गया। प्रस्तुत अध्याय में आचार्य श्री रजनीश के अनुशासन सम्बन्धी विचारों का अध्ययन किया गया है। अनुशासन शिक्षा का महत्वपूर्ण अंग है। इसे किस प्रकार छात्रों पर लागू किया जाये इस बारे में बतभेद है। जैसे आदर्शवादी प्रभावात्मक अनुशासन के हिमायती है तो प्रकृति वादी मुक्त्यात्मक अनुशासन के, लेकिन अनुशासन के महत्व से कोई इन्कार नहीं करता है। बाबा सुकरात से आचार्य जान डीवी तक, हमारे यहॉ भी आचार्य शंकर से महर्षि अरविन्द तक सभी ने अनुशासन को शिक्षा एवं जीवन के लिये उपयोगी माना है।

आचार्य श्री रजनीश ने भी अनुशासन और उसकी उपयोगिता पर व्यापक प्रकाश डाला है। यहॉ इस बात पर विचार किया जायेगा कि आचार्य श्री रजनीश के दृष्टिकोण से अनुशासन क्या है तथा शिक्षा में इसका क्या फंक्सन होना चाहिये। सबसे पहले इस बात पर विचार किया जायेगा कि अनुशासन का अर्थ क्या है ? क्या ड्रैस में जाना, समस से विद्यालय आना–जाना, नियमित विद्यालय जाना, समय से कार्य पूरा करना, यही अनुशासन है ? ओशो कहते है, 'अनुशासन का अर्थ है अपने भीतर एक व्यवस्था निर्मित करना। जैसे तुम हो, तुम एक अराजकता हो। ..... तुम एक नहीं हो, तुम भीड़ हो। जब तुम कहते हो 'मैं' तो कोई 'मैं' होता नहीं। तुम्हारे भीतर अनेक मैं, अनेक अंह है। सुबह कोई एक मैं है, दोपहर कोई और 'मैं' है और शाम कोई तीसरा ही मैं होता है। लेकिन इस गड़बड़ी के प्रति मुम कभी सचेत भी नहीं होते। क्योंकि सचेत होगा भी कौन ? कोई अंतस केन्द्र ही नहीं है, जिसे इसका बोध हो जाये। ..... अनुशासन ..... तुम्हारे भीतर एक क्रिसटलाइज्ड सेन्टर का, एकजुट केन्द्र का निर्माण करना चाहता है।

ओशो आगे कहते हैं, 'इस केन्द्रीकरण की प्रक्रिया को ही अनुशासन कहा है – अनुशासनम्, डिसिप्लिन। यह डिसिप्लिन शब्द बहुत सुन्दर है। यह उसी जड़, उसी उदगम से आया है जहॉ से डिसाइपल शब्द आा। अनुशासन का अर्थ है सीखने की क्षमता, जानने की क्षमता, किन्तु तब तक तुम नहीं जान सकते, नहीं सीख सकते जब तक तुम 'स्वं केन्द्रित' न हो जाओ। उपरोक्त तथ्य को एक घटना के माध्यम से वह इस प्रकार समझाते हैं, 'एक बार एक आदमी बुद्ध के पास आया। वह आदमी अवश्य कोई समाज सुधारक रहा होगा, कोई क्रान्तिकारी। उसने बुद्ध से कहा – संसार बहुत दुख में हैं, आपकी इस बात से मैं सहमत हूॅ।..... अब मुझे बताइये कि मैं क्या कर सकता हूॅ ? बड़ी गहरी करूणा है मुझमें और मैं मानवता की सेवा करना चाहता हूॅ।

सेवा करना जरूर उसका आदर्श रहा होगा। बुद्ध ने उसकी तरफ देखा पर वे मौन ही रहे। बुद्ध के शिष्य आनन्द ने कहा, यह आदमी सच्चा जान पड़ता है। इसे राह दिखाइये। आप चुप क्यों है ? तब बुद्ध ने उस क्रान्तिकारी से कहा, तुम संसार की सेवा करना चाहते हो लेकिन तुम हो कहा ? मैं तुम्हारे भीतर किसी को नहीं देख रहा। मैं देखता हूॅ और वहॉ कोई नहीं है। तुम्हारा कोई केन्द्र नहीं और जब तक तुम्हारे भीतर एक ठोस केन्द्र नहीं बनता तब तक तुम जो भी करोगे उससे और अनिष्ट होगा। ..... अनुशासन का मतलब है होने की झमता। अब तक इस बात पर विचार हुआ कि ओशो के नजरिये से अनुशासन क्या है ? यह अनुशासन का सैद्धान्तिमक पक्ष है। अनुशासन का व्यवहारिक अर्थ है – स्थापित मान्यताओं एवं परम्पराओं के अनुरूप व्यवहार। 'बड़ों की, गुरुजनों की आज्ञा का पालन।'

ओशो इस सम्बन्ध में कहते हैं, 'तो मेरा मानना ऐसा हुआ कि बच्चे आज्ञा का पालन करे उनके विवके को ठीक लगे वहां

तक, और जहॉ उनके विवके को ठीक न लगे वहॉ वह उतनी ही अवज्ञा करे, और उतने ही समर्थ हो आज्ञा तोड़ने में भी जितना आज्ञा का पालन करने में समर्थ है। अर्थात् यह हुआ मतलब कि बच्चा पूर्ण समर्थ हो – आज्ञा पालन करने में भी, और आज्ञा तोड़ने में भी।

ओशो स्वतन्त्रता को सर्वाधिक महत्व देते है। वे कहते हैं, ''विवके की स्वतन्त्रता मापन रखी जाये। ये दोनो विरोध उसमें मौजूद रहने चाहिये कि चाहे तो माने और चाहे न माने। इस मानने और न मानने का संतुलन अगर ठीक से हो जाये तो इससे बच्चे का विकास होगा। तो इससे समाज का विकास होगा। ओशो कही–कही अनुशासन के विरोधी लगते है। जैसे ज बवह कहते है – ''डिसिप्लिन से आदमी डैड होता है। जितना अनुशासित आदमी होगा उतना मुर्दा होगा। लेकिन ऐसा नहीं है। दरअसल ओशो के लिये अनुशासन इतने महत्व की वस्तु नहीं है जितनी की स्वतन्त्रता एवं विवेक। ओशो इसे विवेकपूर्ण स्वतन्त्रता कहते हैं। वे, विवेकपूर्ण स्वतन्त्रता से जो अनुशासन आता है, उसे ही महत्व देते है। आचार्य श्री कहते हैं, ''जड़ता के अनुशासन का कोई मूल्य नहीं है। ..... चैतन्यपूर्वक जो अनुशासन है उसका मूल्य है, क्योंकि चैतन्यपूर्वक अनुशासन का अर्थ यह होता है कि वह विचारपूर्वक अनुशासन में है और अगर आप गलत अनुशासन की मॉग करेगें तो वह इंकार कर देगा।''अब तक इस बात पर विचार हुआ कि ओशो के नजरिये से अनुशासन का सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक स्वरूप क्या है। अब इस प्रश्न पर विचार किया जायेगा कि उपरोक्त प्रकार के अनुशासन का विकास छात्रों में किस प्रकार किया जा सकता है। आजकल सब जगह, छात्रों में अनुशासनहीन की चर्चाएं है। हिंसा, उदण्डता, छात्रों का आम व्यवहार बन गया है। छात्र शिक्षकों तक का सम्मान नहीं करते। ये सब भांति–भांति की अर्धनग्न पोशाकें, यह माता–पिता के प्रति सम्मान का अभाव। निश्चित ही कुछ गड़बड़ कुछ अराजकता सी तो जान पड़ती है। लेकिन ओशो कहते है, 'कोई अर्थ नहीं है इस बात में। इसको हम व्यर्थ ही अराजकता और अनुशासन हीनता मानकर चलते हैं। व्यर्थ ही।

बात को विस्तार से समझाते हुए ओशो कहते हैं 'पहली दफे बीसवीं सदी ने व्यक्ति को व्यक्तित्व दिया, प्राइवेसी दी है। इससे पहले कोई प्राईवेसी नहीं थी। अगर आप एक गॉव में एक अपरिचित स्त्री के साथ निकल जाते है तब आपको पता चलता है कि प्राइवेसी बिल्कुल नहीं है। सारा गॉव पकड़ लेगा कि स्त्री कौन है। गॉव की संक्शन चाहिये ..... गॉव का लाइसेंस चाहिये तो आप एक स्त्री के साथ सड़क पर निकल सकते है। आदमी का प्रेम भी अगर व्यक्ति निर्णायक न हो, समाज निर्णायक हो, तो व्यक्तित्व के जन्म की कोई संभावना नहीं है। किसी को कोई हक नहीं है कि कोई किसी से पूछे कि आप किसके साथ है, यह अशिष्टता की हद है। असभ्यता की, असंस्कृति की हद है। लेकिन, पुरानी दुनिया इसे स्वीकार करके चलती है। असल में पुरानी दुनिया व्यक्ति को कोई मौका नहीं देती।..... बीसवी सदी ने पहली दफे समाज के ढांचे को ढीला किया है और व्यक्ति की आत्मा को प्रखर किया है। लेकिन इससे हमें बहुत बेचैनी होती है ..... जब ढांचे ढीले होते हैं तो अराजकता आ जाती है ..... अनुशासन टूट जाता है। असल में, अनुशासन का वक्त गया। भविष्य में पुराने दिनों का अनुशासन नहीं हो सकता। ..... पुराना अनुशासन समाज आरोपित था। ..... जब व्यक्ति पैदा हो चुका है तो अनुशासन समाज नहीं थोप सकता। ..... असल में पुराना सारा अनुशासन किसी के द्वारा दिया गया है। ..... व्यक्ति पैदा हो चुका है और आप उस ढांचे को थोपना चाह रहे है जो व्यक्ति पूर्व है, प्रि–इंडिविज्युअल है। वह नहीं टि सकता। इसलिये बच्चे अगर आपको बगावत करते मालूम पड़ रहे है तो इसमें बच्चों का कसूर नहीं है। असल में अपने बच्चों को व्यक्तित्व दे दिया और आप अनुशासन दे रहे है जो समाज का है। ये दोनों बाते साथ नहीं चल सकती। जब व्यक्ति पैदा हो गया है। विचार पैदा हो गया है तो अब व्यक्ति को अपना अनुशासन स्वयं तय करना पड़ेगा। असल में हमें अनुशासन की सारी परिभाषा बदलनी पड़ेगी। ..... हमें नया अनुशासन खोजना पड़ेगा। जिसका निर्णायक व्यक्ति होगा। ..... तब अनुशासन आत्मानुशासन नहीं होगा।..... नया अनुशासन व्यक्ति से आविर्भूत होगा। वह एक इनर–डिसिप्लिन होगी जो व्यक्ति के भीतर से आयेगी।

दरअसल ओशो व्यक्तिवादी विचारधारा के हैं वे स्वयं कहते हैं कि मेरी निष्ठा व्यक्ति में हैं समाज में नहीं। इसीलिये वे समाज द्वारा थोपे गये किसी भी अनुशासन को स्वीकार नहीं करते और उसे छोड़ देने का आग्रह करते हुए कहते हैं, 'जब तक हम पुराने अनुशासन की जिद् करेगे तब तक भविष्य का नया अनुशासन जो पैदा हो सकता है वह भी पैदा नहीं हो सकेगा। क्यों नहीं पैदा हो सकेगा ? क्योंकि नया अनुशासन सृजन करने की जो झमता है वह पुराने से लड़ने में ही चुकती रहेगी। पुराने का विरोध होना ही, क्योंकि वह थोपी जाने वाली चीज है। ओशो कहते हैं, 'आज्ञा जब ऊपर से डाली जाती है तो अपने को तोड़े जाने का निमन्त्रण देती है।

इस प्रकार के अनुशासन का – आत्मानुशासन का विकास कैसे हो ? इस सम्बन्ध में ओशो कहते हैं, 'मैं शिक्षकों से मिलता हूॅ तो वे कहते है कि बुद्ध और इन्तजाय करना चाहिये सख्ती से, शिक्षक के हाथ में ज्यादा ताकत होनी चाहिये दण्ड देने की, तो हम अनुशासन रख पायेगें और आदर बचा पायेगें। शिक्ष्झक सोच रहा है हमारे अनुशासन की व्यवस्था

में कुछ कमी है। इसलिये आदर कम हो रहा है। नहीं, आदर की मॉग ही गलत हो गयी है। नये परिवेश में, इसीलिये सारा उपद्रव हो रहा है।

फिर क्या किया जाये जिससे आत्मानुशासन विकसित हो ? आचार्य श्री कहते हैं, 'नयी परिस्थितियों में शिक्षक का पूरा स्थान बदल गया है। अ बवह केन्द्र पर नहीं है। अब केन्द्र पर शिक्षार्थी है।..... भविष्य में शिक्षक को आदर के ख्याल को छोड़कर प्रेम के ख्याल पर आना पड़ेगा और मेरा मानना है, प्रेम आदर से ज्यादा मूल्यवान है। वे एक अन्य जगह कहते हैं, 'आपके हाथ में डण्डा है इसलिये आप उनको डिसिप्लन करना चाहते हैं। डिसिप्लन कोई किसी को करे तो दुनिया बेहतर हो सकती है। प्रेम करो, प्रेम आपका सहायक है, आप प्रेम पूर्ण जीवन जिये, आप मंगल कामना करे उनके हित की, सोचे उनके हित के लिये कि क्या हो सकता है। और वह प्रेम, वह मंगल कामना, असंभव है कि उनके भीतर अनुशासन न ला दे, आदर न ला दे। ..... उस प्रेम से, उस मंगल कामना से डिसिप्लन आनी शुरू होती है। जो थोपी हुई नहीं है, जो बच्चें के विवेक से पैदा होती है। एक बच्चे को प्रेम करो और देखो वह प्रेम उसमें अनुशासन लाता है। थोपे गये अनुशासन एवं विकसित हुए अनुशासन के अन्तिम परिणाम के विषय में ओशो कहते हैं, 'अभी जो जितना चैतन्य बच्चा है वह उतना ही ज्यादा इनडिसिप्लन में होगा और जो जितना इडियट है, जड़ बुद्धि है उतना डिसिप्लन में होगा। जिस बात को मैं कह रहा हूॅ अगर प्रेम के माध्यम से अनुशासन आये तो जितने इडियट है उनमें कोई अनुशासन न पैदा होगा। अभी अनुशासन में वह है जो डल है जिसमें कोई जीवन नहीं है, कोई स्फूरण नहीं है। अभी वह अनुशासनहीन है, जिसमें चैतन्य है, विचार है। अगर प्रेम हो तो वह अनुशासनबद्ध होगा, जिसमें विचार है और चैतन्य है। वह अनुशासनहीन होगा। सारांश ये कि, अनुशासन शिक्षा का महत्वपूर्ण अंग है। सभी शिक्षाशास्त्रियों की तरह आचार्य श्री रजनीश भी अनुशासन को शिक्षा एवं शिक्षार्थी के लिये महत्वपूर्ण मानते हैं।

निष्कर्ष–

ओशो अनुशासन का अर्थ करते हैं। अपने भीतर एक व्यवस्था निर्माण करना। वे इसे स्वयं में केन्द्रित होने की प्रक्रिया मानते हैं। ओशो अनुशासन के दो भेद करते हैं। एक, समाज द्वारा थोपा या अनुशासन, दूसरे व्यक्ति में स्वयं विकसित अनुशासन। ओशो दूसरे प्रभार के अनुशासन को ही स्वीकार करते हैं तथा पहले को छोड़ देने का आग्रह करते हैं। स्वंअनुशासन कैसे विकसित हो, इसके लिये वे ये सुझाव देते हैं कि अध्यापक छात्रों से आदर की मॉग न करे बल्कि उनसे प्रेम करे। इससे स्वं अनुशासन का विकास होगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1. खेडा शिव (2000) जीत आपकी, फुल सर्कल पब्लिशिंग, नई दिल्ली
2. शर्मा राम विलास (1995) विप्लव बेला, भारत भारती प्रकाशन, मेरठ
3. बुधानन्द स्वामी (2002) चरित्र निर्माण कैसे करे, अद्वैत आश्रम प्रकाशन, कोलकाता
4. कामाख्या कुमार (2009) ''योग चिकित्सा संदर्शिका'' युगान्तर चेतना प्रेस, शान्ति कुंज हरिद्वार
5. कुमार शान्ता(1992) धरती है बलिदान की हिन्दी साहित्य सदन, नई दिल्ली
6. सिंह कृपाल (2005) मौत का भेद चण्डीगढ सत्संग सोसाइटी, चण्डीगढ
7. नित्यानन्द स्वामी (2000) श्री गुरू गीता गीता प्रेस, गोरखपुर
8. पाण्डेय रामशक्ल (2012) उदीयमान भारतीय समाज मे शिक्षक अग्रवाल प्रकाशन संजय पैलेस, आगरा
9. पतंजलि (1990).''योग दर्शन'' गीता प्रेस, गौरखपुर पब्लिकेशन्स।
10. श्री वास्तव एस0 एस0 एल0 (2001) : शैक्षिक उत्कृष्टता अग्रवाल प्रकाशन, आगरा
11. स्वामी रामदेव (2008).''योग साधना एवं योग चिकित्सा रहस्य'' सांई सिक्योरिटी प्रिटंर्स प्रा0 लिमिटेड, फरीदाबाद, हरियाणा
12. डा0 सिंह गया (2013)उदीयान भारतीय समाज मे शिक्षक आर लाल बुक डिपो बेगम ब्रिज मेरठ
13. अलेकजेन्डर एफ0 जे0 (1984) ''समाधि के सोपान'' . ट्रायो प्रोसेस कोलकत्ता
14. लाल बिहारी रमन (2012) शैक्षिक चिन्तन एवं प्रयोग आर0 लाल0 बुक डिपो बेगम ब्रिज, मेरठ
15. आचार्य श्री राम (1995) भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्व अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा
16. डा0 सिंह गया (2013)उदीयान भारतीय समाज मे शिक्षक आर लाल बुक डिपो बेगम ब्रिज मेरठ

17.ओमानन्द तीर्थ (1995).''पातंजल योग प्रदीप'', गीता प्रेस, गौरखपुर पब्लिकेशन्स। कल्याणी पब्लिकेशन्स।
18.ओमानन्द तीर्थ (1994)श्री मद्भागवत् गीता, गीता प्रेस पब्लिकेशन्स, गोरखपुर
19. अलेकजेन्डर एफ0 जे0 (1984) ''समाधि के सोपान'' . ट्रायो प्रोसेस कोलकत्ता